आनन्द समाधि

लेखक :

नन्दलाल शर्मा

वक्तव्य

सन्त ने अनुभव किया मानव मन की सम्भावनाओं का। मानव मन सुख का, दुःख का अनुभव तो करता है किन्तु उत्तरोत्तर यदि क्रमशः चेतना का विकास हो तो वह समाधि का भी अनुभव करता है एवम् अपने स्वाभाविक आनन्द का अनुभव कर तृप्त होता है।

सुख के प्रसंग में लिखा गुरुदेव ने कि मनुष्य के मानसिक स्तर के अनुसार वस्तु की प्राप्ति सुख है। दुःख ने जीवन का मूल्य ह्रास कर दिया। "जीव की अबाध गति में समाधि का स्थान भी है।" आनन्द तो प्राप्त है मानव मात्र को किन्तु मानव आनन्द का अनुभव नहीं करता। आनन्द प्राप्ति के लिये मनुष्य वैरागी, अनुरागी, गृहत्यागी, सन्यासी और न जाने क्या-क्या बनता है। बनना नहीं, जो है उसका अनुभव करना है। इस प्रकार आनन्द-समाधि पुस्तक में सद्गुरु के चार लेख सुख, दुःख, समाधि व आनन्द मानव मात्र को यथास्थिति में पड़े रहने के बजाय विकास की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९६९ में प्रकाशित हुआ था। सद्गुरु के नवागन्तुक प्रेमी भक्तों के आग्रह पर इस पुस्तक का प्रकाशन आवश्यक हो गया। सन्त का साहित्य ही तो मानव समाज के लिये अनन्त काल तक सत्य के ज्योतिर्मान दीपक को जाज्वल्यमान बनाये रखता है। अतः उस साहित्य की एक कड़ी को भक्तों के हाथ में सौंपते हुये हम असीम आनन्द का अनुभव करते हैं।

दो शब्द

शब्द कर्कश ध्वनि ही नहीं, गुप्त हृदय की सुप्त भावना को जाग्रत करनेवाला शब्द ही है, अनवरत आनन्द देनेवाला शब्द ही है। तभी तो मीरा ने कहा - "शबद सुनत मेरी छतियाँ फाटत" वह कौन-सी आवाज थी, जो मीरा के हृदय को विदीर्ण कर रही थी? वह शब्द ही था जहाँ अन्य ध्वनियाँ प्रवेश नहीं कर पाईं और मीरा आत्म-विस्मरण कर रम गई अपने ही आराध्य देव में।

चार में फँसा प्राणी आचार, विचार में ही अपना जीवन-यापन करने लगा। वह चतुर्भुज को कब जान पाया? पुस्तक में शीर्षक चार (सुख, दुःख, समाधि, आनन्द)। शब्द का धनी ही सुख, दुःख में समान रूप से विचरण करता हुआ समाधि अवस्था को प्राप्त कर आनन्द-आनन्द कहता हुआ आनन्द में समा पाता है।

दो शब्द अन्य के लिये नहीं, प्रभो! तेरे सम्मुख हैं। दो शब्द - कि ये निरर्थक ध्वनियाँ टकरा कर लौट जावें एवं व्यक्ति आनन्दी जीवन व्यतीत कर पावे। तेरी महती कृपा ही इनके लिये सहायक बन सकेगी।

अनुक्रमणिका

विषय :			पृ.सं.
सुख	....	....	४
दुःख	....	....	१५
समाधि	....	....	२६
आनन्द	....	....	३७

सुख

सुख क्या है? क्यों नहीं मिलता? सुख किसमें है वस्तु में या इन्द्रियों की अनुभूति में? संसार में क्या कोई सुखी भी है या क्षणिक तुष्टि को ही सुख कहा जाता है? कहाँ-कहाँ सुख की खोज की जाती है? क्या प्राणी सुख से श्वास भी ले पाता है या सुख शब्द प्रयोग में ही लिया जाता है यथार्थ में प्राप्त शायद किसी किसी को होता है? क्या नीतिगत सुख, सुख है या यह नीति के बन्धन को ही नहीं मानता? क्या मान्यता में सुख है या अनुभूति में सुख है? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनका उत्तर भी शायद ही सुख दे। उत्तर यदि समुचित हुआ तो बुद्धि प्रसन्न हो सकती है, किन्तु वस्तु या प्राणी की प्रथम प्राप्ति तथा प्रयोगान्त में सुख की उपलब्धि, मन को सुखी या प्रसन्न बना सकेगी यह विचारणीय है।

सुख और प्रसन्नता में कौन प्रधान? सुख या प्रसन्नता? प्रथम प्रसन्नता का भाव आता है या सुख का या दोनों ही एक साथ आते हैं? अनेक प्रश्नों का एक उत्तर यदि गुरु नानक के शब्दों मे दिया जाये तो वे कहते हैं - "नानक दुखिया सब संसारा, वह सुखिया जो नाम आधारा"। नाम के आधार में सुख है। किसके नाम के आधार में सुख है अपने नाम के या भगवान के नाम के? यदि भगवान के नाम के आधार में सुख है तो भक्त आधार लें। आज की दुनिया में मनुष्य न भगवान को मानता है और न भक्त को पहिचानना चाहता है वह तो उस वस्तु की प्राप्ति के लिये अथक परिश्रम कर रहा है जो उसे सुख दे। क्षणिक उत्तेजना का नाम तो सुख नहीं।

यों तो हृदय का स्पन्दन होता ही रहता है जब तक कि प्राणान्त न हो। मनुष्य क्या इस स्पन्दन को सुख का वन्दन समझता है या वस्तु प्राप्ति के अभाव में क्रन्दन ही करता रहता है? क्रन्दन जहाँ निरन्तर वहाँ स्पन्दन

निरर्थक क्रिया मात्र है। गति में सुख, गति में दुःख, अनुकूलता, प्रतिकूलता के कारण। गुरु नानक ने अनुभव किया सुख का और दुःख का। दुःख निवृत्ति का पथ भी निर्देशन किया। महात्मा बुद्ध ने तृष्णा को दुःख का कारण बताया। आदि शंकराचार्य ने जन्म-मरण को दुःख का कारण बताया। जिसने जैसा जीवन में अनुभव किया कह सुनाया। क्या मनुष्य ने इन महापुरुषों के अनुभव से लाभ उठाया? यदि नहीं तो सुख के स्थान में दुःख होना स्वाभाविक है।

प्रकाश सुख, अन्धकार दुःख। प्रकृति का प्रकाश तो उपस्थित है, किन्तु स्वप्नकृति में विचारों के घटाटोप के कारण प्रकाश यदि नहीं तो प्रकाशमय संसार में अन्धकार जब तक दूर नहीं होता, सुख की प्राप्ति कैसे होगी? सूर्य के प्रकाश को कभी-कभी बादलों का जमघट पृथ्वी तक आने नहीं देता, किन्तु यह अवस्था सदा बनी रह नहीं सकती। वायु के प्रबल प्रवाह ने बादलों को इस प्रकार झकझोर दिया कि उनका कहीं पता तक नहीं रहता किन्तु मनुष्य में वह शक्ति कहाँ कि वह मानसिक क्लेश को दूर कर सके। ऐसी अवस्था में सुख कहाँ?

सुख है और सुख था किन्तु मनुष्य ने उस सुख को इन्द्रियों की गति-विधि में न देख, या पा अन्य वस्तुओं में देखना ही सीखा, स्व प्रकृति के प्रकाश से लाभान्वित होना न सीखा। सुख का द्वार बन्द नहीं किन्तु चेतन यदि जड़ वस्तु की प्राप्ति में सुख माने तो मनुष्य का मनुष्य कहलाना सार्थक कब हुआ? मन का पुत्र मानव ने मनन न किया, चिन्तन न किया और मन को भटकने के लिये छोड़ दिया वस्तुओं के संग्रह के लिये तो सुख कहाँ? इस शस्यश्यामला भूमि पर सुख से श्वास न लिया तो उसका आगमन मन में प्राप्ति के लिये आग ही पैदा करेगा सुख नहीं।

प्रकाश का अभाव ही तो दुःख का कारण बनता है। यह प्रकाश न सूर्य का है और न चन्द्र का है। यह ज्ञान का प्रकाश है जो प्राकृतिक प्रकाश से पूर्णतः भिन्न है। ब्रह्म चिन्तन न सही, संसार की गति-विधि से तो अवगत होना होगा, नहीं तो प्राप्ति की क्षणिक उत्तेजना उत्तेजना मात्र है, सुख नहीं। शरीर के प्रयोग में न आ सकी वस्तुएँ तो वस्तुओं के लिये मन का पुत्र व्याकुल है, लालायित है।

सुख का अधिक सम्पर्क शरीर से है और प्रसन्नता का मन से। प्रसन्नता में वस्तु प्राप्ति की प्रधानता नहीं, संवादमात्र ही इसके लिये यथेष्ठ है। शरीर का निर्वाह वस्तुओं पर निर्धारित है अतः वस्तुओं में ही मनुष्य सुख खोजता आया है किन्तु वस्तु का सुख अल्प अवधिकारक है। प्रसन्नता मानसिक तरंग, जो विचारों के अनुसार तरंगित होती है। सुख की खोज जब-जब वस्तुओं में की गई अधिक सुख न दे सकी। प्रत्येक क्षण गतिशील रहनेवाले हृदय को प्रसन्नता ही विशाल बनाती है। हृदय के स्पन्दन में सुखद अनुभूति होने लगती है जब शब्द प्रसन्नता सूचक होते हैं।

प्रारम्भ में प्रश्न था कि "सुख क्या है"। सुख है मन तथा इन्द्रियों की अनुकूलता। आवश्यकताओं की पूर्त्ति क्षणिक सुख है। शरीर और मन दोनों को जो अच्छा लगे वह सुख है। मनुष्य के मानसिक स्तर के अनुसार वस्तु की प्राप्ति सुख है। गरीब की क्षुधा निवृत्ति के लिये साधारण भोजन ही यथेष्ठ है। वह उसी को पाकर सन्तुष्ट तथा सुखी है किन्तु एक धनिक के लिये यह बात नहीं। वह साधारण भोजन को ग्रहण भी नहीं करना चाहता अतः यह कहना कठिन है कि किस व्यक्ति को किस वस्तु में सुख मिल सकेगा।

सुख क्या है? यह प्रश्न सरल है किन्तु इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं। मनुष्य का शरीर मिला यह भी सुख है किन्तु कौन इसे मानेगा। कुछ

कवियों ने मनुष्य तन की प्रशंसा भी की है। यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है। भक्त प्रभु-भजन में सुख मानता है, लोभी धन में, कामी कामिनी में, गायक संगीत में, विद्वान विद्या में, कृषक खेती में, व्यापारी व्यापार में, तस्कर डाके में, अत्याचारी अत्याचार में, शासक शासन में, मल्ल कुश्ती में, नाविक किश्ती में, मिथ्यावादी मिथ्या में, ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मज्ञान में, पिता पुत्र में, प्रिया प्रियतम में, साधक साधना में, मूर्त्तिकार मूर्त्ति में, चित्रकार चित्र में, गायक गायन में, पाठक पुस्तक में, मैं तुम में, तुम हम में, शिष्य शिक्षा में, सेवक सेवा में, पेटू भोजन में, तुलसी राम में, मीरा श्याम में, इन्द्रियाँ भोग में, वैद्य रोग में, किन्तु परन्तु में, जीव जीवन में, प्राचीन नवीन में, दुःखी सुख में, गुणी गुण में, अवगुणी अवगुण में, स्त्रष्टा सृष्टि में, दृष्टि दृश्य में, अभिष्ट इष्ट में, कर्ता क्रिया में, प्रेरक प्रेरणा में, वक्ता व्याख्यान में, प्रजा सुराज में, मौनी मौन में, अन्वेषक अन्वेषण में, अभिलाषी अभिलाषा में, कौन प्रश्न में, क्या वस्तु में, दार्शनिक दर्शन में, शिक्षक शिक्षा में, सन्त शान्ति में, विद्रोही क्रान्ति में, योगी योग में, चमत्कारी चमत्कार में, मतवाला मत में, मस्त मस्ती में, सती पति में, शिकारी शिकार में, अक्षर शब्द में, शब्द वाक्य में, वाक्य भाव में, नर्त्तक नृत्य में, प्रवर्त्तक धर्म में, कर्म फल में, मछली जल में, दूध मक्खन में, ऋतु परिवर्त्तन में, मेघ वर्षण में, मोर मेघ दर्शन में, योद्धा युद्ध में, प्रवंचक प्रवंचना में, वाहक वाहन में, शोभा सुवाहन में, गीत गायन में, कत्थक भाव प्रदर्शन में, चिन्तक चिन्तन में, लेखक लेख में, विधाता विधान में, कर्मठ कर्म में, साधु मठ में, शठ शठता में, जंगली जंगल में, वृक्ष शाखा में, शाखा प्रशाखा में, हरियाली पत्तों में, मनुष्य मनुष्यता में, पशु पशुता में, हाथी धूलि में, बगुला मछलियों में, आवारा गलियों में, विदूषक हँसी में, अभिनेता अभिनय में, नेता श्रोता में, श्रोता उत्तम विषय में, विषयी विषय में, निर्णायक निर्णय में, कथावाचक कथा में, मित्र सखा में, प्रबन्धक प्रबन्ध में, गधा राख में, संमोहक संमोह में, खिलाड़ी खेल में, मुसाफिर मेल में, श्रद्धालु श्रद्धा में, भावुक भावना में और अनेक अनेकता में सुख पाते हैं किन्तु सुख का इतिहास यहीं समाप्त

नहीं हो जाता। मनुष्यों के भाव बदलते रहते हैं और सुख का रूप बदलता जाता है।

सुख देकर सुख पाओ यह नीतिगत सुख है। जिस मनुष्य के पास सुख की भावना नहीं वह अन्य व्यक्ति को सुख कैसे दे सकेगा? प्रश्न उचित है। वस्तुओं से प्राप्त हुआ सुख हरेक व्यक्ति नहीं दे सकता किन्तु सेवा से, मधुर वचनों से तो मनुष्य सुख दे सकता है। दाता ही महान, प्राप्त करने वाला तो उपकृत होगा। जब कृत कार्य नहीं तो उपकृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सुख देना तो सुख पाना है। स्वयं कुछ करेगा तो भावना से प्रेरित होकर करेगा और वह भावना ही उसे सुख देगी यदि व्यक्ति भावना के अनुसार कार्य करे।

नीति अनुभव के आधार पर प्रचलित होती है। नीतिकारों के नीति संग्रह में जीवन बिताया तथा अपने जीवन काल ही में उन्होंने देखा कि उनकी नीति ने बहुतों का उपकार किया है। नीति में बुद्धि प्रधान होती है, हृदय प्रधान नहीं। बृद्धि या मन हृदय को सुख दे पाये तो हृदय में सुख का भाव आयेगा ही।

हृदय मांस और हड्डियों का ढाँचा नहीं होता वहाँ कुछ अनुभूति भी रहती है। पशुवत् कार्य करने वाले व्यक्ति को हृदयहीन कहा जाता है। हृदयहीन के भी हृदय तो रहता ही है किन्तु उस हृदय में सुख का अभाव रहता है। सुख प्राप्ति के लिये मनुष्य हृदयहीन होते देखे गये। विदेशी लुटेरों ने देश की सम्पत्ति को नष्टभ्रष्ट करते हुए सम्पत्ति प्राप्त की और प्रस्थान किया। इस लूट खसोट में सुख की खोज है। यह जघन्य कार्य नीतिगत अनुचित है किन्तु ऐसा कार्य करने वाला नीति की बात क्यों सुनने लगा। शारीरिक सुख की प्राप्ति मनुष्य को अंधा, हत्यारा, स्वार्थी, कंजूस, और न जाने क्या-क्या बना देती है।

जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी मनुष्य सुख के लिये व्याकुल रहता है। वस्तु यदि न मिल सकी तो न सही वह मौत भी सुख की मौत चाहता है। भयानक है यह सुख, कि मरणासन्न व्यक्ति भी इसे छोड़ नहीं पाता। शरीर छुट रहा है, दम घुट रहा है, अब भी वह सुख चाहता है। यह जीवन का मोह है या सुख की चाह यह विचारणीय है। सुख के अभाव में ही तो व्यक्ति मृत्यु को बुला रहा था अतः मोह से भी महान सुख की चाह है। शरीर का सुख निरोग होना है। शरीर से नीरोग वह व्यक्ति कैसे रहेगा जिसे सुख नहीं प्राप्त हो रहा है। सुख के अभाव में मनुष्य चिन्तित रहता है और जहाँ चिन्ता है वहाँ शरीर निरोग रहे ऐसा देखा नहीं जाता।

सुख क्यों नहीं मिलता? सुख मिलता है, मनुष्य सुख प्राप्त करने की विधि नहीं जानता। नहीं जानता अतः वह दे नहीं पाता, ले नहीं पाता। खोज ठीक नहीं या खोज का तरीका ठीक नहीं। वस्तु तो उसे अल्पकाल के लिये सुख पहुँचा सकेगी यथार्थ में सुख प्राप्त होगा भावना के द्वारा। बच्चा भावना क्या जाने उसे तो खिलौने चाहिये। यह बचपन, वृद्धावस्था तक बना रहता है। अब उसके खिलौने, धन, सम्पत्ति, जन के रूप में होते हैं। एक भी खिलौना उसका टूट जाता है तो उसका तो दिल ही टूट जाता है। कहने लगता है, "जब दिल ही टूट गया अब जी के क्या करेंगे।" फिर भी जीवित तो रहना ही पड़ता है किन्तु "बुरे हवाल"। सुख के अभाव ने जीवन को निरर्थक कर दिया, दिया गम जिसका अन्त दम छूटने तक रहता है।

सुख क्यों नहीं मिलता यह अपने दिल से पूछे, दिमाग से पूछे। यदि दिल, दिमाग ठीक नहीं तो उससे पूछे जिसका सही है किन्तु वह पूछना नहीं चाहता, चिन्ता करता रहता है, भीतर ही भीतर आँसू बहाता रहता है। सुख के लिये स्वर्ग की कल्पना की गई। पाप पुण्य की कल्पना की गई। शरीर को सुखाया उपवास आदि करके किन्तु फिर भी सुख न पाया। वाह रे सुख तूने

सबको बेहाल किया तेरी प्राप्ति के लिये। चन्द्रायन व्रत कर रहा है, कार्तिक के महीने में ब्राह्म मुहूर्त्त में स्नान कर रहा है, शारीरिक कष्ट उठा रहा है स्वर्गीय सुख पाने के लिये। पागल! सुख वस्तु में नहीं, तेरी भावना में है। भावना शुद्ध, सुख की वृद्धि दिन प्रतिदिन होने लगी। शरीर निरोग रहने लगा, जीवन में सुख ही नहीं, आनन्द भी आने लगा। किन्तु ऐसा होता कहाँ है। होता कहाँ है ऐसा न कहो, यहीं होता है; और यहाँ नहीं होता तो कहीं नहीं होता यह निश्चित है।

कष्ट उठाकर यदि वस्तु प्राप्त हुई तो कष्ट ही अधिक रहा सुख अति अल्प। प्राप्ति के लिये कष्ट न उठाये ऐसा नहीं कहा जाता किन्तु सुख का मर्म क्यों नहीं समझता? विधाता ने तुझे बुद्धि दी है, दिल दिया है। न बुद्धि से काम लेता है और न दिल में राहत। दोष किसका? न दिल का और न दिमाग का। दिमाग को विकसित करने के लिये विद्या पढ़ी और दिल तो उसे पहले ही प्राप्त था, राहत न थी। राहत मिलती कैसे, उसने प्राप्त वस्तु के लिये कृतज्ञता का भाव न लिया। अबोध बालक की तरह खिलौने इकट्ठे करने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझी, राहत न ली। देखे उसने ऐसे व्यक्ति जो उसकी तरह ही खिलौनों के लिये चिल्ल-पौं मचा रहे थे, उनकी ओर न देखा जो प्राप्त में ही सन्तुष्ट थे। पिता ने जो खिलौने दिये उसी में सुख माना और जाना। बचपन, विचारों के बचपन से कभी अपने को मुक्त न कर सका। अब सुख कहाँ, राहत कहाँ?

यह कहता आया है मनुष्य शरीर दुःख का भंडार, संसार धोखे की टट्टी। इस टट्टी की ओट में शिकार खेलना न जाना तो सुख कहाँ। ओट को नहीं जानता, अपने खोट को नहीं पहचानता तो दुःख तो होगा ही। तिनके की ओट ली थी सीता ने और ऐसी बातें कही रावण से कि वह देखता ही रह गया। सीता की असहाय अवस्था से लाभ उठाना चाहता था रावण किन्तु

तिनके की ओट का रहस्य न समझ सका महा-अभिमानी रावण। वह भी शरीर के सुख का भूखा था। मर कर भी शरीर की भूख न मिटा सका महाबली रावण। इस शरीर की भूख ने कितने ही धनी, मानी, ज्ञानी, अभिमानीयों को धुलि चटा दी। ये मन के खिलौने विचार, ये तन के खिलौने धन सम्पत्ति दोनों ने ही मनुष्य को बेहाल कर रखा है। सुख आज भी उनके लिये पहेली बना हुआ है, सहेली नहीं। सुख पहेली नहीं।

पहले ही कह दिया, सुख वस्तु में नहीं, भावना में है। सुख भावना है। सुख में भी दुःख है दुःख में भी सुख है। सुख का ह्रास, दुःख परिणाम, दुःख का ह्रास सुख निश्चित। गीताकार ने कहा 'सुख दुःख को समान करके जीवन यापन करो'। सुख, दुःख को समान मनुष्य कैसे करे जब कि सुख की अनुभूति मधुर तथा दुःख की तीव्र। सुगन्ध, मधुर सुगन्ध की अनुभूति साधारण व्यक्ति को नहीं होती, सुख में तीव्रता नहीं। चीनी की अधिक मात्रा यदि जल या दूध में डाल दी जाये तो चीनी भी कड़वी हो जाती है उसी प्रकार अधिक सुख, सुख न होकर दुःख ही प्रतिभासित होगा। अतः मधुर सुख तथा तीव्र दुःख को कैसे समान समझा जाये। प्रश्न उचित है।

सुख भी भावना है, दुःख भी भावना है अतः सुख, दुःख को प्रधानता न देकर भावना को ही प्रधानता दी जाये तो शांति सम्भव है। सुख-दुःख, श्वास-प्रश्वास की तरह आते रहते हैं और जीवन की गति बनी रहती है। उदाहरण सरल होने पर भी जिसे मानसिक दुःख है वह इस उदाहरण को निरर्थक ही मानेगा। मान्यता भी भावना के द्वारा ही होती है। दुःख को दुःख न मानना क्या सरल कार्य है ? कार्य है, सरल है या बिरल यह तो मान्यता पर है, भावना पर है। अधिकतर दुःख तो काल्पनिक होता है।

साधारण जीवन को मनुष्य सुख न मान कर दुःख ही मानता है। उसकी आँखों के सम्मुख ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सम्पति और धन से पागल

होकर मनमाना व्यय करते हैं वह उन्हें सुखी मानता है किन्तु वह यह नहीं जानता कि ऐसे व्यक्तियों के हृदय में भी चिन्ता की भट्ठी जलती रहती है। कबीर साहब ने दोनों ही प्रकार के व्यक्ति देखे और कहा - "रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पी, देख बिरानी चोपड़ी मत ललचावे जी" किन्तु महापुरुषों के अनुभव से लाभ उठाने वाले व्यक्ति भी अति अल्प हैं।

सुख, सूख गया। क्यों? जीवन में हरियाली न आई या न देखी। हरियाली तो जीवन में आती है किन्तु व्यक्ति उसे देखता नहीं, पहिचानता नहीं। प्रत्येक क्षण दुःख की कल्पना करते-करते वह सुख को पहिचानना भूल जाता है और यह भूल ही शूल की तरह सदा कष्ट देती रहती है।

किसी ने सुख अनुभव किया है तभी तो वह कहता है कि सुख है। है सुख किन्तु वस्तु में नहीं, भावना में है। अनेक खिलौने भी बालक को सुख नहीं दे सकते यदि बालक स्वस्थ न हो। मन की चञ्चलता तथा तन की विकलता व्यक्ति को चैन से नहीं रहने देती किन्तु यह मन भी तो उसीका है क्यों नहीं मन की चंचलता को देखता तथा उस चंचलता के कारण को खोजकर उसका (कारण का) निराकरण करता है? करे कैसे, उसे तो दुःख के ज्वर ने पकड़ रखा है। बुद्धि के निर्मल निर्णय को मन यदि मान ले तो काल्पनिक दुःख भाप की तरह महा-शून्य में विलीन हो जायेगा। शुभ कर्म सुख की जड़ है किन्तु जड़ व्यक्ति शुभ, अशुभ की ओर ध्यान न देता, परिणाम में लाभ खोजता है अतः परिणाम में लाभ दिखलाई देने वाला दुःख में ही बदल जाता है।

क्षणिक सुख तो आकाश में चमकती बिजली की तरह है। लुप्त होती है बाहर से और गुप्त है हृदय में। लुप्त के पीछे दुःखी होने वाले व्यक्ति ने गुप्त सुख की खोज न की अतः दुःखी तो होगा ही। गुप्त शक्ति सभी को

प्राप्त है किन्तु खोज सभी नहीं करते। विज्ञान के अनेक विद्यार्थी और अनेक विद्वान किन्तु आविष्कार का श्रेय तो किसी-किसी को मिलता है किन्तु यह बात सुख के लिये नहीं है। सुख सबको दिया है विधाता ने किन्तु जो दुःख को भूलना नहीं चाहता वह सुख की खोज कब करने लगा? जीवन का लक्ष्य सुख प्राप्ति है, दुःख की माला जपना नहीं? चाहता है सुख को (फिर भी) दुःख को छोड़ नहीं पाता कैसा आश्चर्य है।

मौत का आश्चर्य नहीं, जीवन के साथ उसकी अवधि भी रहती है किन्तु दुःख तो साथ न था। मातृगर्भ से भूमिष्ठ होते ही दुःख तो छोड़कर आया इस धरा धाम पर किन्तु नौ मास की यातना ने ऐसी दिल में छाप लगा दी दुःख की कि उसे भूल न सका बन्दर का घाव ही बना डाला। बात-बात में दुःख मानने वाला व्यक्ति प्रत्येक कार्य में दुःख का आभास मानने लगा। वह (व्यक्ति) मुझे देखकर हँसता क्यों है, वह मुझे प्यार क्यों नहीं करता, मुझे सफलता क्यों नहीं मिलती, अन्य व्यक्ति अवगुणी होते हुए भी प्रतिष्ठित क्यों है आदि विचारों ने उसे मानसिक क्लेश का शिकार बना रखा है।

यह संसार एक बाजार है यहाँ सभी प्रकार की वस्तुएँ तथा भावनाएँ हैं। ग्राहक अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करता तथा मूल्य चुकाता है। दुःख के ग्राहकों की संख्या ही अधिकाधिक देखी गई। सड़ी शराब पी के पागल होते देखे जाते हैं कोई उनसे पूछे कि भले आदमी पैसे देकर यह इल्लत क्यों पाली? शराबी कहता है पाली की बात छोड़, ला मेरी प्याली, पीकर भूल जाऊँ दुःख को, चिन्ता को। यह शराब कुछ समय के पश्चात् असर खो बैठती है किन्तु दुःख का नशा कब काफूर हुआ।

हरियाली में सुख के बादल छिपे हुए हैं नैनों से देख नैनीताल में। यह ताल संगीत की मात्रा नहीं यह ताल विचारों की है जो सम भाव आने पर

केवल सुख ही नहीं आनन्द का कारण बनती है। सुख की चर्चा करते-करते दु:ख की वार्ता आ ही गई है। दु:ख की निवृत्ती का नाम ही तो सुख है। वृत्तियों की तरंगों में बहता हुआ व्यक्ति यदि दु:ख को ही अपनाता रहा तो उसने मातृगर्भ में निरर्थक ही कष्ट उठाया। आया है संसार में तो सार ग्रहण कर सुख का। दु:ख तो गंदा कपड़ा है उसे धो डाल सुन्दर विचार रूपी साबुन से। निरर्थक विचारों की उधेड़बुन में न फँस। अब हँस, तुझे सुख ग्रहण करना है। करना है कुछ ऐसा करना है कि जीवन सुख से व्यतीत हो और अतीत का दु:ख दूर हो।

★★★★

दु:ख

विधाता की सुन्दर सृष्टि का काँटा है दु:ख। काँटा चुभता है शरीर के अंग विशेष में और यह दु:ख तो कभी-कभी हृदय के स्पन्दन का ही अन्त कर देता है।

दिल का घाव दु:ख, हृदय की प्रसन्नता सुख। इतने काँटे फैलाकर विधाता ने अपने उद्यान को क्या कंटकाकीर्ण नहीं बनाया? मृतकुक्ष में कष्टप्रद अवस्था में रखकर भी क्या विधाता को सन्तोष हुआ? शायद कष्ट की सृष्टि इसलिये की कि मनुष्य उसे सुख में स्मरण नहीं करता अत: अपनी स्मृति के लिये उसने दु:ख की सृष्टि की होगी। यह भी तो कल्पना मात्र है। जब यह कहा जाये कि दु:ख, सुख भी तो कल्पना ही है तो मन मानता नहीं, बुद्धि मानती नहीं। बुद्धि माने या न माने, मन माने या न माने कल्पना ही है। दु:ख काँटा है, माना किन्तु यह काँटा सुख रूपी फूल से अलग नहीं। महान दु:ख यही कि मनुष्य दु:ख को भूलता नहीं। अप्रिय की चिर स्मृति अप्रिय ही रहती है। सुख की प्राप्ति के लिये भी तो दु:ख कहें या कष्ट उठाना पड़ता है।

दु:ख और कष्ट में अन्तर है जिस प्रकार सुख और प्रसन्नता में। सच पूछा जाये तो 'मैं' में दु:ख है, 'तुम' में दु:ख नहीं। 'मैं' में भार पड़ा मन पर तन पर। 'तुम' भार हरण किया मन का तन का। 'तुम' में आज्ञानुवर्त्ती है मानव, 'मैं' में स्वेच्छाचारी है मानव और स्वेच्छाचारी अन्य व्यक्ति की इच्छा की कद्र नहीं करता, परिणाम संघर्ष में बदलता है और संघर्ष, हर्ष का कारण नहीं यदि संघर्ष से कुछ प्राप्ति न हो हर्ष की। 'तुम' मानसिक तुम नहीं, यह तो उत्तम पथ है दु:ख से मुक्त होने का। वस्तु अपनी किन्तु मनुष्य यदि वस्तु की बीमा करवा लेता है तो बहुत कुछ चिन्ता से मुक्त हो जाता है। वस्तु की

बीमा क्यों अपने दुःख और चिन्ता की ही बीमा क्यों नहीं करवाता कि मुक्त हो भ्रमण करे भव में। मृत्यु के पश्चात् मुक्ति की अभिलाषा करना कोई अर्थ नहीं रखता।

दुःख की भावना से मुक्त होने का मार्ग तो 'तुम' में है 'मैं' में नहीं। लोग इसे पलायनवाद कहेंगे उत्तरदायित्व से। उत्तरदायित्व का उत्तर एक नहीं अनेक हो सकते हैं। व्यापारी को अपने कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है तथा कर्मचारी को अपने स्वामी पर। इस निर्भरता में उत्तरदायित्व दोनों पर है। किसी का कम किसी का अधिक। इसी प्रकार मनुष्य क्यों नहीं समझता कि वह अपनी जिम्मेदारी यदि मन, बुद्धि के अनुसार निभाता गया तो दुःख न होगा उसे शारीरिक, मानसिक।

दुःख और कष्ट की बात कही गई, कही के साथ यदि गई चिन्ता तो फुरसत मिलती किन्तु ऐसा होता कहाँ है। कहाँ है दुःख और कहाँ है कष्ट यह बात तो वह मनुष्य कह न सकेगा जो बात-बात में दुःख और कष्ट को भूल नहीं पाता। नहीं पाता यदि संसार में तो क्या कोई अन्य स्थान है जहाँ वह पा सकेगा? मन के खेल मन ही जाने मन ही माने किन्तु असर तन पर पड़ता है यही दुःख है।

कष्ट शरीर पर, दुःख मन पर प्रभाव डालता है। शरीर का कष्ट दूर होता है दवा से, अर्थ से किन्तु मन का दुःख तो किसी की दया ही दूर करती है। दुःख दर्द मिटता नहीं स्थाई भाव से जब तक कि मनुष्य विवेक से काम न ले। सत्संग के अभाव में विवेक का भाव नहीं आता। बुद्धि की निर्मलता विवेक के लिये सहायक होती है।

जल भी है, जल में मल भी है, जल में कमल भी है। जल में कमल जब खिलता है तो सरोवर की शोभा है और है जल की मुग्धावस्था। जल की

मुग्धावस्था की जानकारी सबको नहीं होती। जल में जब तक कमल नहीं खिलता तब तक जल स्नान तथा पान (पीने) के लिये व्यवहृत होता है। मुग्धावस्था में ही कमल खिलता है। जल को पी डाला, गन्दा कर डाला जन-जन के व्यवहार ने। कमल (जल में) खिलने के पश्चात् जन-जन के व्यवहार के लिये उतना नहीं रहता जितना कि जन, मन को प्रसन्न रखने के लिये।

दुःख से कमल का क्या सम्बन्ध? सम्बन्ध कहाँ, यह तो अवस्था विशेष है। हृदय कमल दुःख के अभाव में ही खिलता है, प्रसन्न रहता है। "संसार दुःख का भण्डार" यह प्राचीन लोकोक्ति है। युक्ति के अभाव में उक्ति सम्भव है उचित ही जान पड़े। जल के अभाव में कमल मुरझा जायेगा, सत्संग के अभाव में दुःख की वृद्धि होगी। यदि तथाकथित सत्संग भी संसार को दुःख का भंडार बड़े रोचक तथा भयानक ढंग से वर्णन करता रहे तो फिर शांति कहाँ? दुःख आत्म शुद्धि का साधन है। आत्मा की शुद्धि नहीं, अन्तरात्मा की शुद्धि जहाँ - मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अपने खेल दिखलाते रहते हैं। आत्मा तो स्वयं ही शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, निर्विकार है।

अधिकांश दुःख काल्पनिक तथा ईर्ष्यावश है। आधुनिक काल में दीन दुःखी को हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस दृष्टि ने दुःख की अभिवृद्धि की है।

दुःख की भावना की अभिवृद्धि आधुनिक काल में अधिक हुई है। विज्ञान ने दुःख बढ़ाया या सुख? साधारण मनुष्य यही कहेगा कि सुख, किन्तु यदि दुःख की भावना की ओर गंभीरतापूर्वक देखा जाये तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि दुःख बढ़ा है दिल में और सुख बढ़ा है उनके लिये जो श्री सम्पन्न हैं और वह सुख भी शरीर का ही अधिक है, मन का नहीं।

मन सूक्ष्म, तन स्थूल। स्थूल का अभाव व्यक्ति को अधिक दिखलाई देता है। मन की अभिलाषा एक नहीं अनेक हैं और उन अनेक इच्छाओं की पूर्ति सम्पूर्ण विश्व की सब वस्तुएँ भी कर न सकेंगी। केवल वस्तुओं से प्रसन्न होने वाला यह मन नहीं यह आदर भी चाहता है और प्रसन्नता भी। आदर और प्रसन्नता वस्तु में नहीं, भाव में है और भाव में भी अभाव देखनेवाला मन सदा कुछ न कुछ अभाव का सृजन करता रहता है। मन, मन से ही परेशान रहता है। अनेक कल्पनायें, सभी कल्पनाओं को साकार रूप में देखने के पूर्व ही उसे इस तन का परित्याग करना होता है। अतः दुःख को चिर साथी बना चला इस लोक से।

परलोक की बात कल्पना वाले अधिक जानते हैं, क्योंकि कल्पना में प्रतिबन्ध नहीं। मनुष्य को कल्पना के द्वारा भयभीत भी कर सकते हैं और प्रसन्न भी। प्रसन्न तो वे न करेंगे जिनका दिल प्रसन्न रहता है। जो दूसरों के दिल में निरर्थक विचारों से घृणा उत्पन्न करेंगे संसार से, सगे सम्बन्धियों से वे प्रसन्न कैसे रह सकेंगे?

पाप की कथा तो व्यथा उत्पन्न करती है, प्रसन्नता नहीं। ऐसे लोग उपनिषद का प्रचार क्यों नहीं करते? यदि करें तो दुनिया को मुसाफिरखाना कहना न छुट जाये। दुःख इसी बात का है कि सत्य का प्रचार न कर, दुनियादारी का ऐसा वर्णन करते हैं कि मनुष्य को चैन से बैठने ही नहीं देते। कब तक धर्म का यह विभत्स भाव फैलता रहेगा? अन्धकार दूर होगा और मेढ़कों की टरटराहट दूर होगी। एक ओर दुनियादारी का व्यवहार, दूसरी ओर इन महापुरुषों की चीत्कार में परिवर्त्तन होगा ही होगा। दुःख के बादल फटेंगे और सत्य का प्रभात उदय होगा जहाँ सत्य की प्रभा की प्रधानता रहेगी (प्र) भात की ही नहीं।

दुःख संक्रामक मानसिक रोग है। धन संग्रह भी दुःख दूर न कर सका। मानसिक पराधीनता भी दुःख का कारण है। बड़े-बड़े कारखाने भी वस्तुओं के अभाव की पूर्ति न कर सके और न महापुरुषों के महावाक्य ही दुःख कम कर सके। वस्तुओं की कीमत अधिक और इन महावाक्यों का पालन करना कठिन।

मनुष्य को इसी पृथ्वी पर रहना है किन्तु इससे भी शिक्षा ग्रहण नहीं करते। हल चल रहा है भूमि पर भूमि शान्त, क्योंकि वह जड़ है, चेतन मानव सचेत नहीं रहता कि उसकी साधारण सी अभिलाषा क्या खेल दिखलायेगी वह नहीं जानता। अभिलाषा की पूर्ति के लिये सचेष्ट रहे किन्तु दुःख को हृदय में स्थान क्यों दे? दुःख तो इच्छा पूर्त्ति का कारण न बन सकेगा उसे चाहिये उत्साह, स्वयं पर विश्वास किन्तु वह विश्वास खोकर विश्व में रहना चाहता है और यही कारण है दुःख का। यों तो वह साधारण से साधारण वस्तु विक्रेता का विश्वास करता है, नहीं करता विश्वास विश्वकर्ता का। दुःख ने अश्रुपात करवाया, दुःख दूर करने के लिये पसीना भी बहाया किन्तु दुःख दूर न हुआ, कुछ हलका पड़ा, कुछ शरीर पर भारी पड़ा (परिश्रम)।

दुःख ने जीवन का मूल्य ह्रास कर दिया। ह्रास, विलास करता हुआ मनुष्य भी दुःख भूल नहीं पाता। गम गलत करने के लिये सुरा का सेवन किया, दुःख दूर कहाँ हुआ। सुरापान कर बेसुरा बकने लगा। दुःख दूर होता है सन्तोषप्रद विचारों से। जहाँ विचार नहीं, हृदय में आनन्द का संचार नहीं, वाणी में भाव का प्रसार नहीं, प्रचार नहीं, वहाँ हार है, प्राणी का संहार है। जीवित अवस्था में शव-सा रहता है, उसे दुःख ने ग्रसित कर रखा है।

दुःख था नहीं, दुःख है नहीं किन्तु साधन-हीन व्यक्ति सर्वत्र दुःख ही दुःख देखता है! यदि दिल में दुःख न होता, पीड़ा न होती तो चैन से सोता

और प्रभात होते ही भात की चिन्ता न करता। प्रभा देखता प्रभु की जिसके सभी कार्य प्रभावशाली हैं। प्रथम प्रभु को ही न माना, प्रभा से प्रतिभा को ही न अपनाया। प्रभु का साक्षात्कार न हुआ तो प्रतिमा जो थी प्रभु की उसको भी श्रद्धा, भक्ति से न देखा तो दुःख तो आयेगा ही। अन्धा तो था नहीं व्यक्ति, क्रोध, लोभ ने उसको अन्धा बना दिया और परिणाम यह हुआ कि दुःख के अन्धकूप में मनुष्य गिर पड़ा। चारों ओर दिवाल, सन्तोष, शान्ति का देवाल (देने वाला) कोई नहीं। अन्धकूप में जल नहीं, जल नहीं अतः प्यासा पड़ा है, छटपटा रहा है। बाहर निकाले कौन?

अधिकांश मनुष्य, मनुष्य तो कहलाते हैं मनुष्यता के गुण उनमें देखे नहीं जाते। अन्धकूप, विचारों का अन्धकूप ही उनका घर है। बाहर भी कुछ है, न जानते हैं और न मानते हैं अतः बाहर निकालने का प्रश्न ही नहीं होता। ऐसे लोग दुःख मानते हैं, दुःख उठाते हैं तथा संसार को दुःख का भण्डार बनाने में लगे हैं। गन्दे विचार मनुष्य को अन्धा बना देते हैं, इसमें आश्चर्य क्या?

कुछ यथार्थ अभाव रहता है किन्तु सभी के लिये नहीं, वही दुःख का कारण बनता है। यथार्थ दुःख बहुत कम होता है, मान्यता बहुत अधिक है। मनुष्य दुःख ही मानता है किसी और को क्यों नहीं मानता कि दुःख दूर हो। यदि सृष्टिकर्त्ता को न माने तो कुछ ऐसे विचारों को हृदय में स्थान दे जो उसे मानसिक शक्ति प्रदान कर दुःख भुला सकें। दुःख को हृदय का देवता बनाकर रखना तो बुद्धिमानी नहीं। यह ऐसा आवरण है जो जीवन की रासभूमि का दर्शन ही नहीं करने देता। मनुष्य असहाय, मनुष्य दुःखी अपने विचारों के कारण। विचार यदि निर्मल हों तो दुःख उसके पास आ नहीं सकता। दूर से ही अपना खेल दिखाता रहेगा।

चिन्ता, दुःख की पृष्ठभूमिका है। चिन्ता का निराकरण न हो सका तो दुःख उपस्थित हुआ इसका इतना वृहत क्षेत्र है कि मनुष्य कहीं भी क्यों न चला जाये दुःख वहाँ भी उपस्थित है। विज्ञ भी इसकी कृपा से अज्ञ बन जाता है।

जीव है और जीवन है। प्राण है और प्राणी है। अवधि है और कार्य है। कार्य अधिक और अवधि कम। स्वप्न अनेक और प्रत्यक्ष कम। प्रत्यक्ष में शान्ति कम, अशान्ति अधिक। इस कम और अधिक के चक्र के कारण सुख कम, दुःख अधिक। अवधि यदि शुभ कर्म में व्यतीत हुई तो सुख अधिक होगा किन्तु इस अवधि का ज्ञान होना क्या सहज काम है? कर्म शुभ है या अशुभ इसका निर्णय भी सरल नहीं। यदि निर्णय गलत तो दुःख तो होगा ही इसमें तर्क, कुतर्क के लिये स्थान कहाँ? न चाहने पर भी जो चला आये उसे भगाना भी सरल नहीं। जन्मजात दुःख को सुख में बदलने के लिये ही तो जीवन मिला, जो मिला उसकी कीमत न की तथा भूत-भविष्य के विचार में यदि वर्त्तमान बीत रहा है तो सुख के स्थान में दुःख ही अधिक रहेगा। रहेगा इसी संसार में और संसार को असार समझ जीवन बिताने वाला व्यक्ति क्या कभी सुख पा सकेगा?

सुख और दुःख तन और मन की अवस्था विशेष हैं। तन को काल विशेष में एक वस्तु सुखदायक तथा अन्य अवस्था में दुःखदायी होती देखी जाती है। ग्रीष्मकाल की उपयोगी वस्तुएँ शरद, शिशिर, हेमन्त में निरर्थक सी सिद्ध होती हैं। ज्ञान के उपासक को कर्मकाण्ड के कार्य अनुपयोगी प्रतीत होते हैं यह मानसिक अवस्था है जो कभी-कभी ज्ञानी की मानसिक व्यथा में बदल जाती है। दुःख का विषय है कि मनुष्य अपने विचार तथा धारणा के कारण दुःख पाता है। काल्पनिक दुःख ने ही मनुष्य को अधिक कष्ट दे रखा है। वस्त्र, भोजन तथा वासस्थान का यदि समुचित प्रबन्ध हो तो मनुष्य को वास्तव में कष्ट कहाँ, दुःख कहाँ?

स्थूल प्रकृति मनुष्य को इतना कष्ट नहीं देती जितना कि सूक्ष्म प्रकृति जिसे मनुष्य स्वभाव कहता है। स्वभाव बनता है संस्कार से और संस्कार बनता है चर्चा तथा कार्य से। चर्चा मुख के द्वारा तथा कार्य इन्द्रियों के द्वारा। जिन फूलों को गर्म जल से सींचित किया जायेगा वे तो मुरझायेंगे ही। हृदय तो फूलों से भी अधिक कोमल है। दुःख की आहें, गम की उदासी जीवन के सौरभ को विकसित तथा प्रसारित नहीं होने देतीं। देती हैं सृष्टिकर्त्ता को अपशब्द। परिणाम स्पष्ट है शब्दों की तरंगे मनुष्य को दुःखी भी बनाती हैं और सुखी भी। शब्द तरंगों से परिपूर्ण समस्त विश्व। विश्व के प्रत्येक कोने से शब्द झंकृत हैं किन्तु अपने कर्त्तव्य का अभिमानी मनुष्य इन शब्दों की ओर ध्यान दे या न दे किन्तु शब्द अपना सूक्ष्म प्रभाव डालते रहते हैं। इन शब्दों की झंकार में दुःख की आहें ही अधिक रहती हैं। उन ऋषि, मुनियों के शब्दों की झंकार मनुष्य सुनने के लिये कब प्रस्तुत रहता है? उसे गम से कब फुर्सत? अतः वह दुनिया की चर्चा करता हुआ मन, तन को दुखित करता रहता है।

सभी देशों में महापुरुषों ने साधना के द्वारा व्यक्तियों को लाभ पहुँचाने के लिये सफल प्रयास किया किन्तु इन बातों का प्रभाव स्थायी न रह सका। अन्य मनुष्यों के पाप ग्रहण करने का आश्वासन भी दिया किन्तु आज उनके अनुयाइयों ने ही विज्ञान के बल पर विश्व को संग्राम भूमि बना रखा है. क्या यह दुःख का विषय नहीं? दुःख से परित्राण कब पा सका मनुष्य? यदि मनुष्य सुख का यथार्थ रूप में उपासक होता तो इस संसार का रूप ही कुछ और होता। दुःख ने संसार की उपादेयता को क्षीण ही किया, पश्चाताप का भाव कहीं-कहीं दिया किन्तु जीवन के गन्तव्य पथ को सरल न किया।

पश्चाताप भी एक प्रकार का दुःख ही है। कुछ धर्मों में इसका दूसरा रूप अपराध स्वीकृत है। अपराध की स्वीकृति अपराध से मुक्त नहीं करती।

अपराध का फल दण्ड होता है। दण्ड शारीरिक तथा आर्थिक। मानसिक दण्ड कहीं-कहीं मृत्यु का कारण भी बन जाता है। मनुष्य ने शारीरिक तथा आर्थिक दण्ड को ही प्रधान मान रखा है। मानसिक दण्ड बड़ा भयानक होता है।

दुःख कर्दम है, सूख अति सूक्ष्म सुगन्ध। कर्दम है अतः करता है और दम नहीं लेता, फिर भी करता ही जाता है। विश्राम कहाँ? मानसिक दुःख न केवल बुद्धि को ही असहाय बना देता है बल्कि शरीर को भी जीर्णशीर्ण बना देता है। दुःखद संवाद ने अति दुःख मानने वाले मनुष्य के रात्रि से प्रभात तक काले बालों को सफेद बना दिया। दुःख ने पागल बना दिया, मानसिक तथा बौद्धिक संतुलन ही नष्ट कर दिया। कैसा अबोध प्राणी है मनुष्य कि इस दुःख रूपी महासंक्रामक रोग से अपनी रक्षा न कर सका। दुःख को भुलाती है निद्रा किन्तु दुःख निद्रा को समीप ही नहीं आने देता। देगा केवल विषाद, परिताप, अनिद्रा, बेचैनी तथा जीवन की तुच्छता का भाव। क्यों इस महारोग को मनुष्य ने अपने दिल में स्थान दिया?

मनुष्य कह सकता है कि वह दुःख नहीं चाहता फिर न जाने क्यों यह (दुःख) हृदय में प्रवेश कर आसन जमा कर बैठ जाता है कि प्रस्थान का नाम ही नहीं लेता। घर को साफ करने पर भी वायु के कारण कूड़ा आ ही जाता है। चिन्तनशील व्यक्ति भी कभी-कभी दुःखी देखा जाता है। कारण है वातावरण, परिस्थिति, सामाजिक रीति रिवाज तथा स्वभाव। सामाजिक नियमों ने कितने ही प्राणियों की हत्या की दहेज आदि कुरीतियों के कारण। बालक बालिका का भेद भी दुःख का कारण बनता है। यह दुःख है या सामाजिक अभिशाप है?

जहाँ हृदय की पवित्रता है, विचारों की कोमलता है, व्यवहार संयत है वहाँ दुःख स्वयं ही भाग खड़ा होता है। कारण को भी यदि मनुष्य

पहिचानता तो बुद्धि उसे इतना कष्ट न पाने देती किन्तु इस अबोध मन ने तन-मन को निरर्थक ही बेहाल कर रखा है। अबोध को कब बोध हुआ? प्रत्येक क्षण किसी न किसी वस्तु के अभाव ने मनुष्य को चैन से रहने भी न दिया। दीर्घायु की कामना वह व्यक्ति करे जिसके जीवन का कुछ लक्ष्य हो। केवल भोजन, वस्त्र, वासस्थान तथा पुत्र, कलत्र की चिन्ता करना तो मानव जीवन का लक्ष्य न था किन्तु परिवार ने तथा उसकी चिन्ता ने मनुष्य को बेहाल कर दिया। सृष्टिकर्त्ता को दोषी ठहराना उचित नहीं। ज्ञात, अज्ञात शक्ति अनवरत कार्य करती है। मनुष्य न ज्ञात को जाने, न अज्ञात को वह दुःखी होगा ही। मधुमक्खी ही रसपान कर रस संचय करती है अन्य मक्खियाँ क्या जानें कि इन फूलों में रस भी है और मिठास भी।

अज्ञानता ही दुःख है यह साधारण जन की परिभाषा है किन्तु यहाँ तो ज्ञानी, महाज्ञानी कहलाने वाले व्यक्ति भी दुःखी देखे जाते हैं। जन्म से मृत्यु तक का लेखा-जोखा लिया जाये तो वहाँ दुःख की मात्रा ही अधिक देखी जाती है। कण-कण में रस, वहाँ भी अभागा प्राणी जीवन से ऊब कर दुःख को ही अपनाये वहाँ जीवन अभिशाप ही समझा गया।

आने-जाने का ताँता बन्धा हुआ देखकर भी मनुष्य तथ्य को न समझे वह दुःख तो पायेगा ही। रहना, रहने के लिये नहीं है जाने के लिये है और जाने आने के लिये है यह क्रम कब कम हुआ? दम, कम और गम में कम ने दम घुटाया और गम आया। इस गम को मिटाने के लिये मनुष्यों ने उत्सव की प्रथा चलाई किन्तु अनेक त्यौहार मनाकर भी मनुष्य गम कम न कर सका बल्कि इन त्यौहारों को मनाते समय भी मनुष्य शान्त और प्रसन्न न होता हुआ केवल अभाव को ही प्रधानता देता हुआ दुःख को भूल न सका। यह चिरसंगी भाव मनुष्य को सदा-सदा कष्ट देता आ रहा है।

धार्मिक पुस्तकों ने तीर्थ, व्रत, उपवास का आदेश दिया मनुष्य को सान्त्वना देने के लिये, किन्तु वहाँ भी मनुष्य ने शंका ही की, विश्वास का आधार न लिया। तीर्थ भ्रमण कर भी मनुष्य मन के चक्कर को शान्त न कर सका। मन ने दुःख को चूरन चटनी की तरह चाटा और बेचैनी अनुभव की, फिर भी इस महासंक्रामक अभाव से मनुष्य निष्कृति न पा सका। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है या जीवन की विफलता, यह विचारणीय प्रश्न है।

ऐसे अनेक प्रश्न हैं किन्तु मनुष्य प्रसन्नता को क्यों नहीं अपनाता जबकि इस प्रसन्नता के लिये मनुष्य को कानी कोड़ी भी व्यय नहीं करनी पड़ती। शान्त होता नहीं, सद्‌भावना की इच्छा रखता नहीं, राग, द्वेष की अग्नि को सदा प्रज्वलित रखता है, वह दुःख को कैसे भूल पाये? रोग है, दवा भी है, दुःख है, उसके निवारण की विधि भी है। यदि विधि को न अपनाये तथा विधाता को दोषी ठहराये तो दुःख असाध्य रोग की तरह मनुष्य को सदा कष्ट देता रहेगा।

पंक्तियाँ दुःख की गाथा गाने के लिये नहीं लिखी गई किन्तु दुःख निवारण की विधि की ओर संकेत करने के लिये ही लिखी गई हैं। निवारण की सरल विधि है आधार, शरणागति, प्रभु पदों का प्रेम तथा सत्संग जो दुःखी मानव को सुखी बनाता है।

★★★★

समाधि

साधना के पथ अनेक, साधक अल्प। योग अनेक, योगी अल्प संख्यक। समाधि के अधिकारी अति अल्प। षड़्चक्र भेदन में अनेक विक्षिप्त होते देखे गये। तांत्रिक साधना विलक्षण। ऐसी अवस्था में समाधि की बातें अटपटी सी लगती है। किन्तु जिनके दिल में लगी है लगन वे चुपचाप कैसे बैठ सकते हैं? प्रियतम की चाह उन्हें राह बतलाती और चाह की तीव्रता एक दिन उन्हें समाधि अवस्था तक पहुँचा देती है।

सरल प्यार का मूल्यांकन वे साधक क्यों करने लगे जिन्हें कौतुक प्रिय है। तन, मन की कसरत जिन्हें योग के नाम से प्रिय है वे सहज प्रेम को उच्च दृष्टि से क्यों देखे? प्रेम और सरलता को हृदयगंम करना नहीं होता। स्वाभाविक स्थिति होती है उस व्यक्ति की जिसे आनन्द में ही समा जाना है। विकट साधना अनेक संकट उत्पन्न करती है वहाँ सहज भाव का अभाव रहता है।

समाधि एक स्थिति विशेष है जहाँ तदात्म का भाव रहता है। यह अवस्था कुछ काल के लिये रहती है किन्तु सहज समाधि अपना विशेष स्थान रखती है। तन, मन की संयुक्त क्रिया के द्वारा ही अधिक साधक समाधि अवस्था की ओर अग्रसर होते हैं, कल्पना उनकी सहायक होती है तथा कल्पना का साकार रूप उनकी समाधि कहलाती है। श्वास, प्रश्वास के नियंत्रण को अपनाते तथा मन को बलपूर्वक कल्पना को सजग करने को बाध्य करते-करते किसी-न-किसी दिन वे समाधि अवस्था को प्राप्त करने के लिये सचेष्ट रहते हैं।

यह क्रम चला आ रहा है पंथ के अनुयायियों के द्वारा। साधना को कष्ट साध्य बनाकर कहाँ तक वे योगी लाभान्वित हुए, मानसिक शान्ति प्राप्त

कर सके यह वे योगी ही जानें। ऐसे योगियों के चमत्कारों को नमस्कार करने वाले तो देखे गये - किन्तु इस कार्य के द्वारा साधारण मानव को क्या प्राप्त हुआ यह कहना कठिन है। एक ओर इन योगियों ने चमत्कार दिखलाये, दूसरी ओर माला का चक्र चलाकर साधुओं ने माल कमाकर मठाधीश बन अपनी पूजा करवाई, लाभ जन साधारण को कहाँ हुआ ?

सरलता तथा प्रेम मार्ग का पथिक न चमत्कार दिखलाने के फेर में जाता है और न मठ आदि के। यों ही कुछ चमत्कार बन गया उनकी सद्भावना के द्वारा तो वे उसके लिये न अभिमान करते हैं और न आश्रम आदि बनाकर प्रतिष्ठित होना चाहते हैं। इष्ट ही उनके जीवन का अभिष्ट है और प्रेम की पराकाष्ठा ही उनकी सहज समाधि बन जाती है। समाधि अवस्था का दिग्दर्शन कराते समय रामकृष्ण परमहंस पूर्व अवस्था का वर्णन तो कर सके किन्तु जब वह अवस्था आई जिसे समाधि कहते हैं भाव में लीन ही हो गये, वर्णन न कर सके। मन की उच्च स्थिति तथा मन का लय होना साधारण कार्य नहीं। समाधि का स्थान उच्च है, साधन क्षेत्र में। साधारण जन साधना का इच्छुक नहीं, वहाँ समाधि का प्रश्न करना व्यर्थ-सा प्रतीत होता है।

जीवन जीव के लिये भी है और निर्जीव के लिये भी। निर्जीव का जीवन सुप्तावस्था में रहता है तथा उसकी गतिविधि के अवलोकन पर यदि विशेष ध्यान न दिया जाये तो पता भी नहीं चलता कि इसमें भी गति है, जीवन की अवधि भी। चन्द्र लोक का यात्री यदि मानस लोक की यंत्रणा को दूर कर पाता साधना द्वारा तो यह संसार सार पूर्ण होता तथा मानसिक स्तर कुछ ऐसा होता कि मनुष्य को निरर्थक संघर्ष से फुरसत मिलती। मिलती है शांति यहीं, मुक्ति यहीं किन्तु व्यक्ति ने संघर्ष को अपनाया हर्ष को नहीं, प्रसन्नता को नहीं।

समाधि की अवस्था अति आनन्द दायिनी, तभी तो साधक अपने प्राणों की बाजी लगाकर उस अवस्था को प्राप्त करना चाहता है। युग की महिमा है आज का युग विज्ञान के नाम पर प्रकृति की शक्ति से सुख प्राप्त करना चाहता है, मानसिक शांति को हेय समझा जाता है। कुछ दार्शनिक भी इस युग की देन है जिन्हें तर्क तथा बुद्धिवाद ने मदोन्मत्त कर रखा है। मनोविज्ञान के नाम पर कुछ ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं जिन्हें प्याज के छिलके उतारने का नाम दिया जाये तो न्याय संगत होगा। सूक्ष्म को परिभाषा बद्ध करना समुद्र को जल से रिक्त करने का प्रयास मात्र है। सन्तोष इतना ही है कि कुछ कर रहे हैं। समय का अपव्यय मात्र नहीं है किन्तु असीम भाव समुद्र है मनुष्य का मन, हृदय एवं अनुभूति। सृष्टि का विकास हुआ है या विनाश यह प्रश्न है। विकास हुआ है भौतिकवाद का तथा विनाश हुआ है मनुष्य की सद्वृत्तियों का। ऐसी अवस्था में समाधि की चर्चा कुछ असामयिक-सी प्रतीत होती है।

जीव की अबाध गति में समाधि का स्थान भी है। यह अवस्था प्राप्त होती है उन व्यक्तियों को जिनके जीवन का परम लक्ष्य परम शांति पाना है। जहाँ माला जपने के लिये भी मनुष्य समय देना नहीं चाहता वहाँ समाधि का प्रश्न कहाँ? प्रत्येक व्यक्ति दार्शनिक नहीं होता और न विज्ञानवेत्ता, उसी प्रकार समाधि के अधिकारी भी अति अल्प होते हैं।

सुख दु:ख के पश्चात् समाधि की बातें भी मस्तिष्क में आने लगीं। जातक कथाओं के अनुसार महात्मा बुद्ध को भी अनेक जन्म ग्रहण करने के पश्चात् बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। अत: समाधि के उपासक को भी अनेक जन्म ग्रहण करने पड़ते होंगे। मनुष्य इस जन्म की बातों का रहस्य भी जान नहीं पाता वहाँ अनेक जन्मों की कथा की कल्पना करना मात्र है। गीता में अनेक जन्म के पश्चात् संसिद्धि प्राप्त होती है ऐसा लिखा है अत: धार्मिक मान्यता के

अनुसार यह मानना उचित जान पड़ता है कि किसी विशेष अवस्था तक पहुँचने में मनुष्य को अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। समाधि, सहज समाधि का अधिकारी लाखों में कोई एक होता है।

अनेक मार्ग, अनेक पंथ, अनेक धारणायें यदि इनका विवेचन किया जाये तो युग बीत जायेंगे विवेचन में। अतः मानसिक शांति तथा विकास के लिये मनुष्य को प्रथम अपनी वृत्तियों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। वृत्तियाँ जब शांत रहने लगती हैं तब कहीं समाधि की बात आती है।

प्रारम्भ में प्रेमाभक्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जहाँ प्रेम का पुजारी, सहज समाधि का अधिकारी होता है। विवाद को यदि मनुष्यवाद हटा दें, प्रेम में विभोर हो जाता है वहाँ कुछ कहना नहीं होता। साम्यावस्था की अवधि नहीं होती उसी प्रकार समाधि की भी अवधि नहीं। मनुष्य निरन्तर परिवर्त्तन का इच्छुक है किन्तु इच्छुक होना ही यथेष्ट नहीं, साधन की भी आवश्यकता है उनके लिये जो प्रेमाभक्ति से रहित हैं। नृत्य, संगीत, लीला को प्रेमाभक्ति समझना न्यायसंगत नहीं। प्रेम में विभोर होकर नृत्य करना, पद गाना यह अवस्था विशेष है किन्तु जिस समाधि की बात लिखी जा रही है वहाँ नृत्य, संगीत की प्रधानता नहीं विभोर अवस्था ही प्रधान है।

रसिकता किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं। विराट-विश्व रंगों से परिपूर्ण है, यदि मनुष्य प्रकृति की शोभा का उपभोग न कर सके तो यह मानसिक रसिकता का अभाव है। अनन्त आनन्द का समुद्र मनुष्य के सम्मुख तरंगित हो रहा है यदि मनुष्य सूक्ष्म वृत्तियों का आधार ग्रहण करे। स्थूल वस्तुओं का संग्रह ही जहाँ मनुष्य ने प्रधान समझ रखा है, वहाँ क्षणिक उल्लास मिल सकता है। जिस प्रकार मनुष्य मानसिक व्यथा को भुलाने के लिये सुरापान करता है किन्तु व्यथा दूर हुई कहाँ? नशा तो अल्प समय के

लिये स्नायु उत्तेजना देता है तथा प्रलाप भी किन्तु शान्ति कहाँ, सन्तोष कहाँ? शान्ति, सन्तोष तो उस व्यक्ति को प्राप्त होगा जिस व्यक्ति ने स्थूल को मुख्य न मान सूक्ष्म भावना को अपनाया हो।

चेतना एक शक्ति है, जिसका उपयोग तथा उपभोग हरेक व्यक्ति उचित ढंग से करना नहीं जानता या करना नहीं चाहता यह विवादग्रस्त प्रश्न है। यदि यह संसार केवल कष्ट और संकट का ही स्थान है तो इसी संसार में आधुनिक काल में भी केवल सुख-शान्ति ही नहीं, समाधि अवस्था का भी आनन्द प्राप्त किया विशिष्ट व्यक्तियों ने। यदि ऐसे मनुष्यों को महापुरुष महात्मा आदि कह कर साधारण जन सन्तुष्ट होना चाहते हैं तो बात जुदा है। अन्य व्यक्ति को गुणी महामानव, कहने से मनुष्य को शान्ति नहीं मिल सकती। प्रकृति आज भी अपना रहस्य उद्घाटन करने को प्रस्तुत है उन व्यक्तियों के लिये, जिनके हृदय में तीव्र लगन है, प्रकृति की शक्ति के परिचय की। बुद्ध और मुहम्मद की जयजयकार से ही मनुष्य का मंगल नहीं हो सकता। यदि वह इच्छुक है परम शान्ति का तो उसे भी वह ज्ञान, आनन्द प्राप्त हो सकता है।

जहाँ नमस्कार ही प्रधान है, वहाँ साधना का स्थान कहाँ? जहाँ साधना नहीं, वहाँ समाधि असम्भव। मनुष्य की दुर्बलता का कारण है आत्म-विश्वास का अभाव। इस अभाव की पूर्ति के लिये ही मानव-तन मिला था मानव को किन्तु जिसके जीवन में उल्लास के लिये स्थान नहीं, जो मानसिक तनाव को ही तन का धर्म समझता है, उसका जीवन निरर्थक ही व्यतीत होता है। अतीत के गीत गाकर जीवन की समस्या हल न कर सका मनुष्य, भविष्य की चिन्ता ने जिसे व्याकुल कर रखा है, वह वर्त्तमान के महत्त्व को समझने में असमर्थ ही रहता है।

प्राण है, प्राणी है, प्रेरणा है, प्रेम है और है प्रिय जिस प्रिय के विश्वास के अभाव में प्राणी आकुल, व्याकुल रहता हुआ भी उसे जानने तथा मानने का प्रयास तक नहीं करता, उसके लिये समाधि की अवस्था में आना असम्भव है। प्रेम प्रेरणा देता है और यह प्रेरणा ही असम्भव को सम्भव बना देती है। बना देना यदि आसान होता तो कुछ ऐसा होता कि बनाने की कीमत ही न होती। बनाई किसी ने पृथ्वी, कहाँ मनुष्य ने पृथ्वी के महत्त्व को समझा? प्रेरणा जल है, प्रेम पृथ्वी। प्रेम था और है, पृथ्वी थी और है किन्तु यदि प्रेरणा नहीं, यदि जल नहीं तो भूमि की अवस्था शोचनीय ही नहीं, पृथ्वी निरर्थक सिद्ध हो जाती। जल भूमि पर आया, भूमि उर्वरा, प्रेरणा हृदय में आई प्रेम सजीव हो उठा। सोया हुआ जाग उठा और संसार को सारपूर्ण समझ, अभाव से दूर हो, भाव में भव को नवीन रूप दे प्रेरणा को सार्थक बनाया। किसने? सोये हुए प्रेम ने।

प्रेम को वासना का रूप देता आया है मनुष्य अतः शान्ति न पा सका। आँगन टेढ़ा नहीं है, नृत्य करना ही नहीं जानता जो वह तो आँगन को टेढ़ा ही बतलायेगा। संसार बुरा नहीं, संसार बनाने वाला बुरा नहीं, फिर बुरा कौन? वह जो यहाँ सार ग्रहण न कर पाये। प्रेम नहीं, प्रेरणा नहीं, पथ का अनुसरण नहीं, पृथ्वी पर रहने का ढङ्ग न जाने, उसके लिये समाधि की बातें क्यों अर्थ रखने लगी? प्रेम को क्यों प्रधानता दी गई? कारण स्पष्ट है, वासना ने विश्व को मिष्ट विष तुल्य बना रखा है। इस वासना की पूर्त्ति कब हुई? बार-बार जन्म ग्रहण कर भी मनुष्य वासना से मुक्त न हो सका।

अवतारवाद को भी मनुष्य वासना की पूर्त्ति के लिये ही भजता है। सन्त जो शान्ति का भण्डार है, वहाँ भी वह वासना की तृप्ति की इच्छा रखता हुआ उपदेश सुनना चाहता है; शान्ति नहीं ऐसे व्यक्ति के लिये, समाधि की आवश्यकता कब हुई? जहाँ वासना के पुजारी हैं, वहाँ प्रेम के उपासक भी

हैं। अति अल्प हैं किन्तु यह गल्प नहीं, सत्य है कि ऐसे ही महापुरुष सृष्टि के प्रकाश-स्तम्भ हैं। उनमें कुछ आज भी भगवान के रूप में पूजित हैं। जिनकी पूजा नहीं, उनके नाम संसार के लोग नहीं जानते। न जानें लोग, किन्तु ऐसे व्यक्ति होते रहते हैं और होते रहेंगे। उद्यान के पुष्पों की चर्चा तो है किन्तु अरण्य की शोभा बढ़ाने वाले भी फूल हैं। इतिहास या जनश्रुति कितने व्यक्तियों का नाम लेंगे वा उल्लेख करेंगे? इतिहास में स्थान न पाता तो मनुष्य जीवन को निरर्थक सिद्ध नहीं कर सकता।

साधना मनुष्य जीवन की उपयोगिता है। साधन प्राप्त होता है साधना से। चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक। क्षुद्र वृत्तियों को उत्तेजित करने वाले आधुनिक काल में अल्प नहीं। धन का स्वामी निर्धन से घृणा करता आया या उपेक्षा। अब निर्धन व्यक्तियों के समूह ने धनिकों को तुच्छ समझना भी प्रारम्भ कर दिया। क्या धनी, निर्धन दोनों शान्त हो पाये? यदि नहीं तो विवेक से काम क्यों नहीं लेते दोनों वर्ग?

किसी को उत्तेजित करना सरल है, शान्त करना कठिन। ऐसे व्यक्तियों के लिये समाधि की चर्चा अरण्य-क्रन्दन के समान है किन्तु पृथ्वी यदि स्वार्थियों का घर है तो कुछ परमार्थी भी इसी वायु में साँस लेते हैं। साधना में लगा हुआ व्यक्ति दोनों वर्गों पर समान दया का भाव रखता है। मनुष्य की अति स्वार्थ बृद्धि का भी कभी न कभी अन्त होगा या परिवर्तन यह भविष्य ही बतलायेगा।

पृथ्वी पर स्वर्ग राज्य की स्थापना की कल्पना करने वाले लोग हैं शायद उनकी कल्पना साकार हो जाये। हो या न हो किन्तु अपने जीवन को निरुद्देश्य बिताने के लिये ही तो नहीं आया है। धन उपार्जन कर भी मनुष्य शान्ति प्राप्त न कर सका तो धन किस काम आया? सच्चा धन वही जो

शान्ति दे, शान्ति दे और दे जीवन को ऐसी प्रेरणा कि मनुष्य इसी भूमि पर आनन्द से रह सके। समाधि? जिसे सुख से जीना नहीं आया, मरना नहीं आया वह यों ही आया और चला; उसके लिये समाधि की चर्चा केवल बकवास मात्र हैं।

सर्वशक्ति सम्पन्न की शक्ति का जीता-जागता नमूना है मनुष्य। यह मानव मन और तन का ही अनोखा कार्य है कि प्रभु की अज्ञात शक्ति को प्रत्यक्ष किया साधना के बल पर। शरीर को व्याधि मन्दिर कहना यदि उचित है तो "सब साधन कर मूल शरीरा" कहना अनुचित ही होगा। अनुचित है नहीं - चित्त जिसका अनु अर्थात् पीछा नहीं करता प्रिय का तो आधि, व्याधि तो आयेगी ही इसमें आश्चर्य क्या? शरीर केवल व्याधि मन्दिर ही नहीं, साधना का मूल भी है। समाधि की अवस्था यदि सभी को प्राप्त हो जाती तो इसकी प्रधानता ही न रहती। न रहती चिन्ता और न रहता भ्रम जिसके निवारण के लिये मनुष्य सचेष्ट है।

साधना चेष्टा है उनके लिये जिनके हृदय में अनुराग का स्रोत प्रवाहित नहीं हो रहा है। स्रोत की सौत है चिन्ता और चिन्ता का स्रोत है निरर्थक विचार धारा। स्रोत धारा में परिवर्तित होता है और धारा नदी में। समुद्र इनका अन्तिम लक्ष्य, जहाँ पहुँच कर इनका प्रवाह इनका नहीं रहता समुद्र का हो जाता है। साधारण अवस्था में मनुष्य स्वयं चिन्ता करता है और साधनावस्था में स्वयं नहीं 'स्व' ही साधक की चिन्ता हरण कर परम शान्ति प्रदान कर आनन्दमय कोश में पहुँचा देता है।

मनुष्य के संसार में आधि, व्याधि भी है और समाधि भी। समाधि दो प्रकार की एक चिर समाधि जिसे मृत्यु कहते हैं और दूसरी आनन्द समाधि जो प्रत्येक अवस्था में शान्ति प्रदायक है। आनन्द समाधि भावयोगी के लिये

जन्मसिद्ध अधिकार की तरह है। तर है जिसका हृदय, मन लय हो रहा है भाव में, योग हो रहा है परमानन्द से वहाँ अभाव कहाँ, साधना विशेष कहाँ?

परमशान्ति ही जिसके जीवन का लक्ष्य है वह विशेष साधना का उपासक नहीं देखा जाता। झंझट, वह भी निरन्तर यदि होता रहे तो शान्ति कहाँ? अतः साधना सम्पन्न व्यक्ति अल्प काल के लिये समाधि का प्रयास करता है। विचारों का चक्र ही ऐसा होता है कि मनुष्य उस चक्र से सरलता से अपनी रक्षा नहीं कर पाता। करता है और पाता नहीं विश्राम, आराम वह तो व्याकुल होगा ही। व्याकुलता दूर होती है जब मनुष्य भाव में रहता है। रहता है इसी संसार में किन्तु उसका संसार (यह संसार) दूसरा ही संसार रहता है जहाँ व्याकुलता या चिन्ता नहीं रहती।

जिसने भावयोग का आश्रय नहीं लिया उसे ये बातें संदेहात्मक प्रतीत होती होगी किन्तु भावयोगी के लिये असम्भव भी सम्भव हो जाता है। भाव की विशेषता ही ऐसी है कि वह शारीरिक, मानसिक अभाव को नजदीक नहीं आने देती। देती है पूर्ण विश्राम, जिसके लिये प्राणी अनेक जन्मों से प्रार्थी है। प्रार्थना करता है मुख से, दिल से नहीं, सुनता है प्रवचन हृदयंगम करने के लिये नहीं, देखता है दुनिया का व्यवहार किन्तु उन आँखों से नहीं जो सन्त प्रदत्त हैं, वहाँ भाव कहाँ? अभाव का हो गया स्वभाव वहाँ वाणी का प्रभाव नगण्य ही रहता है। भ्रमण करते-करते प्राणी न भ्रम से मुक्त हो सका और न भ्रमण से। रमण करता रहा योनियों में, प्रकृति ने कहा - रे मर और जन्म ले और रमण कर, भ्रमण कर जैसा करता आया वैसा ही भोगता आया। अब तो चेत, मनुष्य जन्म मिला कुछ ऐसा कर कि जन्म मरण का कष्ट न उठाना पड़े।

मनुष्य योनि तो मिली किन्तु न शमन कर सका मन का और न दमन कर सका तन का। परिणाम सुखदायक कहाँ? ऐसे व्यक्तियों के लिये

समाधि की बातें क्या अर्थ रखती हैं। संकट, विकट की बातें करते-करते अन्तिम सांस लिया। कहाँ साधना, कहाँ समाधि? अवस्था अल्प में ही चल बसा तो विवश था किन्तु परिपक्व अवस्था पाकर भी कुछ कर न सका। किया या हुआ ऐसा काम कि कहाँ राम, कहाँ विश्राम?

समाधि की चर्चा ही सुनी और वह भी अति अल्प ने। इतना कार्य का भार दिल पर रहा, दिमाग पर रहा कि दिल बेचैन, दिमाग परेशान। झूठी शान बघारता रहा अपने तन की, धन की, विद्या की, बुद्धि की। किसी की कृपा पाकर शान रहती है किन्तु अभिमान नहीं रहता उसको ध्यान तक नहीं रहा अपने शरीर तथा मन का। मान, अभिमान के लिये मर मिटा किन्तु शान्ति न पा सका। यह जीवन है? जहाँ पल भर के लिये भी चैन नहीं, शान्ति नहीं। दुनिया को बदलना चाहता है किन्तु अपना दिल नहीं बदलता। सुधार करना चाहता है किन्तु अपने सुधार की ओर ध्यान न दिया। ऐसे व्यक्तियों से दुनिया का भला क्या होना है अपना भी भला न हो सका। बदहोशी में जिन्दगी बिताई। मौत आई, मौत आई की भावना से ही भयभीत होता रहा। व्यक्ति तो व्यक्त किया करता है सुन्दर विचार। यह कैसा व्यक्ति जो दिन रात दुनिया की निन्दा स्तुति में ही लगा रहा?

वे भी व्यक्ति ही थे जिन्होंने अव्यक्त को व्यक्त किया अपने प्रेम से, अपनी वाणी से। जिन्होंने आत्मसमर्पण किया प्रभु पादपद्मों में और पाया वह रस जिसे नो रस मन के तथा छह रस जिह्वा के न दे सके। वह कौन सा रस है जिसे संसार न दे सका? वह रस है भाव रस, जिसे पाकर समाधि का आनन्द लिया जा सकता है।

भूमि यदि रत्नगर्भा है तो नर भी रत्नगर्भा है। इसी भूमि पर उन नर रत्नों ने रस की वृष्टि की वाणी द्वारा, शुभ कार्यों द्वारा। दुनिया ने उन्हें

भगवान तो माना किन्तु उनके अपनाये हुए मार्ग की ओर ध्यान न दिया। उनका नाम भी लिया, मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे भी बनाये किन्तु वह कार्य न किया जिसने उन्हें भगवान, पैगम्बर की उपाधि दी। उपाधि तो दी किन्तु समाधि की चर्चा ही रही, चिर समाधि के पूर्व, भाव समाधि न ली।

★★★★

आनन्द

तुम मुझे विश्वास दो मैं तुम्हें आनन्द दूँगा यह किसी महापुरुष की वाणी है। तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा यह किसी महावीर की उक्ति है। श्वास निरर्थक यदि विश्वास न हो, खून बेकार यदि आजादी के लिये न दिया जाये। खून मिला किन्तु विश्वास न मिला तो आजाद होना मुश्किल। आजादी के लिये खून चाहिये और आनन्द के लिये विश्वास। रक्त की गति है स्थूल शरीर में और आनन्द में वह गति है जिसके द्वारा सद्गति है।

इमान लाओ न कहो, इमान करो। लाओ और करो में अन्तर है। लाना किसी अन्य से होता है और करो में स्थिति है इमान की। लाना कैसा, वह तो है मनुष्य के हृदय में, उसका प्रयोग करना पड़ता है। प्रयोग में योग है - आत्मा का परमात्मा का। आत्मा है, परमात्मा नहीं यह कैसी बात? परम भाव में परमात्मा है और आत्मा तो सभी को प्राप्त, आनन्द आत्मभाव में है। अपने भाव को न जाने, स्वभाव को न जाने उसे आनन्द कैसे मिले?

सुख प्राप्ति के लिये मानव से दानव बना। था नहीं दानव, बना। मानव है तो मा-आत्मा, पिता-परमात्मा के सम्मुख हो (नव) झुक, देख आनन्द की तरंगे तेरा अवगाहन करती हैं कि नहीं, करकर देख। कर और देख क्या हो रहा है तेरे दिल में और संसार में। तेरा दिल क्षीर सागर तेरा परमात्मा उस पर विराजमान। मान, संतों ने कहा है। जगत मिथ्या नहीं, जगत तो जगा रहा है तेरी सुप्त वृत्तियों को। जाग और देख अपने आत्मदेव, बलदेव को। जगत मिथ्या उनके लिये जिन्होंने जगत को ही सर्वस्व मान अपने आत्मदेव को भुला दिया है। तुझे तो कुछ करना है, आनन्द लेना है, जीवन का जगत का।

जो गत हो गया है उसकी चिन्ता व्यर्थ, जो सम्मुख हैं, प्रत्यक्ष है वह तेरे आनन्द के लिये है, चिन्ता के लिये नहीं। सुख क्षणिक, आनन्द शाश्वत। शाश्वत से योग कर, क्षणिक तो क्षणिक ही है वह तेरा चिरसंगी नहीं। कभी तंगी, कभी मन रंगी (सुख)। रंग है कच्चा (सुख का) और आनन्द है सच्चा। सच्चे को छोड़ कच्चे के पीछे क्यों दौड़ रहा है? कच्चे में दाग, सच्चे में अनुराग। अनुराग ही तो तुझे वह राग बतायेगा कि उसे गाते-गाते तू सुख दुःख को भूल जायेगा और हृदय की शूल स्वतः रास्ता बना लेगी बाहर निकलने के लिये।

कूड़ा करकट बाहर, साफ सुथरा भीतर। घर साफ तो मन मन्दिर में चैन की बंशी बजा और आनन्द ले जीवन का, जगत का। लिखने वाले ने लिखी अपने दिल की बात, तू उसे गीता कह या रामायण। गीता ने गीत सुनाये, तुझे पसन्द तो ले आनन्द गीता का। रामायण ने राम की बातें कहीं यदि बात पसन्द तो क्यों बनता है मतिमन्द। ले बातों का आनन्द। बात ही बात में रात बीत जायेगी और होगा आनन्द का प्रभात। प्रभात में बात नहीं, आनन्द के प्रकाश से प्रकाशित हो जगत को देख, जीवन को देख, नव जीवन को देख, अब तू आनन्दी है। आनन्द की किरणों ने जगत को नवजीवन दिया। आनन्द ही यदि आनन्द का उपभोग न करेगा तो करेगा कौन?

लेकर आया है आनन्द, आनन्द लोक से, आया है आनन्द के लिये और जायेगा भी आनन्द लोक में। जिन्हें इन बातों पर विश्वास नहीं कहो उन लोगों से - "तुम मुझे विश्वास दो, मैं तुम्हें आनन्द दूँगा।" तुम खून बहा रहे हो सुख के लिये, मैं आनन्द दे रहा हूँ विश्वास पर। तुम, पर नहीं, मेरे ही विराट रूप के एक अंग हो। तुम्हें जंग नहीं करना है, रंगना है अपने उन जीर्ण, शीर्ण विचारों को जिन्होंने तुम्हारे जीवन के मूल्य का ह्रास किया है। उपहास किया है जीव का और सर्वनाश करने पर तुले हैं। (तुम्हारे जीर्ण,

शीर्ण विचार)। विचार किया कहाँ यदि विचार करता मानव तो आनन्द से विचरण न करता, क्यों जगत के निरर्थक कार्यों में अपना समय बिताता। आनन्द, आनन्द की ध्वनि से गूँजा देता विश्व को और फिर यह कहना न पड़ता कि तुम विश्वास लाओ मैं तुम्हें आनन्द दूँगा।

विचार और कार्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। कभी विचार बादलों की तरह बरस पड़ते हैं और कभी वायु में विलीन हो जाते हैं। कार्य तो विचारों का परिणाम है। बादल और जल, जल और बादल, विचार और कार्य, कार्य और विचार यह क्रम कहे या चक्र अनवरत चलता ही रहता है। कार्य को परिणाम इसीलिये कहा कि विचार अदृश्य रहते हैं और कार्य तो दृष्टिगोचर होते हैं। आनन्दी पुरुष के विचारों की दुनिया आनन्द से परिपूर्ण रहती है तभी तो वह आनन्दी है। ऐसे पुरुषों के कतिपय कार्य अन्य लोगों को देखने को मिलते हैं किन्तु उनके कुछ कार्यों को देखकर यह समझ लेना कि इसके अतिरिक्त इसके पास और क्या हो सकता है, गलत है। ऐसे महापुरुष बहुत कम कार्य करते देखे गये। उनके विचार हिमालय से भी महान होते हैं। सम्पूर्ण विश्व का आनन्द स्वतः उनके पास उसी प्रकार आता है जिस प्रकार कि समुद्र के पास नद, नदियों का जल। उनके हृदय में एक विचित्र प्रकार का आकर्षण होता है जिसके प्रभाव के कारण आनन्द की स्वतः वृष्टि होने लगती है। आनन्द का उपभोग करने के लिये ही तो आया है आनन्दी पुरुष। यदि ऐसे आनन्दी पुरुष से भी मनुष्य लाभ न उठा सका तो कहना होगा कि जीवन के आनन्द से वंचित ही रहा।

चित्त में चाव नहीं, हृदय में उल्लास नहीं, मन मगन नहीं, शरीर स्वस्थ नहीं, कार्य संतुलित नहीं, वार्त्ता में प्रेम नहीं, संग ठीक नहीं, हर बात में नहीं, नहीं, तो हाँ कब कह सकेगा मनुष्य? हाँ कहे तो यहाँ, वहाँ आनन्द पा सकता है अन्यथा अन्न ही अन्न था और है, अतिरिक्त कुछ न था और न

कुछ है। अन्य (दूसरा) था आनन्दी पुरुष, नगण्य था जीवित अवस्था में किन्तु आनन्द की ज्योति फैला गया, वह अब भी है और रहेगी अनादि काल तक। लाभ न उठाया जीवित अवस्था में और अब भी साधारण जन के लिये नगण्य ही है क्योंकि आनन्द पाना तो सौभाग्य की बात है। अभागा प्राणी सुख के लिये ही परेशान है आनन्द तो किसी किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है।

प्रकृति विकृति नहीं देती, देती है अपना प्यार। प्राणीमात्र के लिये फलती है, फूलती है अपना सर्वस्व न्योछावर करती है किन्तु ऐसा कृतघ्न है प्राणी कि उसके उपकार को उपकार ही नहीं मानता और कहता है, प्रकृति बाधक है। प्रकृति बाधक नहीं, बाधक है उसका मन और तन। ऋतु परिवर्त्तन का लाभ पाकर भी हृदय परिवर्त्तन नहीं करता। वही पुरानी डफली और वही पुराना राग। दुनिया बुरी, शरीर पाप का भंडार, नारी नरक की खान, कामिनी कांचन मनुष्य के पतन का कारण। कैसी नादानी है। नर उत्पन्न होता है नारी से और वही नारी जाति बुरी। नारी नर (पति) को परमेश्वर माने और वही पतन का कारण। कांचन तो मुद्रा है जिसके अभाव में मुख की मुद्रा ही बिगड़ जाती है। ये उपदेश हैं या धोखा देने का ढंग, भ्रम फैलाने का तरीका। आनन्द लो, छोड़ो इन निरर्थक बातों को जिन्हें तुम धर्म समझ बैठे हो।

आनन्द लेने का अर्थ यह नहीं है कि कामिनी और कांचन में आनन्द लो। ये तो सुख के साधन हैं, आनन्द के नहीं। आनन्द, भाव अभाव से परे है। विश्वास दो तुम्हें आनन्द मिलेगा। कौन-सा विश्वास? वह विश्वास कि तुम जीव नहीं, शिव हो, तुम दुःख भोगने के लिये नहीं आये आनन्द लेने के लिये और देने के लिये आये हो। शुष्क जीवन और शुष्क वृक्ष सफल नहीं होता। जो कुछ हो रहा है आनन्द के लिये हो रहा है ऐसा क्यों नहीं समझता। भला बुरा कहने से दुनिया का कब सुधार हुआ। बह जा सुधा की धारा में तेरे लिये आनन्द ही आनन्द है।

अमर कौन? जिसने मौत की परवाह न की। जिन्दगी कुछ दिन की है इसे आनन्द से गुजार। क्यों चिन्ता करके स्वर्ण सदृश्य शरीर को कृष करता है। पाई हुई देह को कुछ ऐसे कर्मों में लगा कि चिन्ता समीप न आ सके। अधिक तृष्णा, अधिक चिन्ता। अधिक किया हुआ भोजन अजीर्ण पैदा करता है और अधिक चिन्ता सुखा डालती है रक्त को जिसके अभाव में शरीर रोगाक्रान्त हो जीवन को भार रूप बना देता है। शरीर को कष्ट दिया किसने? तेरी चिन्ता ने, तेरी तृष्णा ने। जब तन ही ठीक नहीं फिर मन? मन की निरर्थक कल्पना ने ही तो तन को जर्जरित किया।

आनन्द के लिये कहीं जाना नहीं, वह तेरी विचार धारा में है। कुटिया बनाना नहीं, कुटिया तेरे शरीर के कोने-कोने में है। तीर्थ तेरा शरीर है और चारों धाम नख, शिख में है। द्वारिका तेरा मुँह जहाँ से शब्द बाहर निकलते हैं। पुरी तेरा हृदय जहाँ जगन्नाथ विराजमान हैं। बद्रीनारायण तेरा मस्तक जहाँ ज्ञान के हिमालय से प्रेम की गंगा बहती है और रामेश्वर तेरे चरण जो तेरे नहीं प्रभु प्रदत्त हैं, चरण शरण के लिये हैं, शरणागति के द्योतक हैं।

भारत में रहता है तो भार में रत न हो, संहार में सम्मिलित न हो, आनन्द की वृष्टि कर तू ऋषि मुनियों के देश का है। यदि तू न करेगा तो क्या करेगा वह देशवासी जो भोग विलासी है। वसुधा कुटुम्ब है तो कुटुम्ब के सदस्यों से कह कि सदस्यता से काम लो, दस्यु न बनो, किसी को दास बनाने की चेष्टा न करो। हिलमिल कर रहो कि प्रेम बढ़े और जीवन का आनन्द आये। कहो उनसे कि जीना सीखो, अन्य लोगों को भी जीने दो और आनन्द का भाव लो। ये विलासिता की सामग्रियाँ तुम्हें शान्ति न दे सकेंगी। विज्ञान से ज्ञान की ओर आओ कि जीने का आनन्द आये।

आनन्द की महिमा ही अनोखी। वे भक्त जो चार प्रकार की मुक्ति की भी उपेक्षा करते हैं, वे भी आनन्द चाहते हैं उनका आनन्द इष्ट के चरणों में है। मद-पान या मद या अभिमान केवल अपने को भुलाने का सहारा है। विलासिता या सुरापान मनुष्य को राहत देते हैं अति अल्प समय के लिए। नशा उतरा और परिस्थिति सम्मुख आती है किन्तु आनन्द की तो बात ही निराली है। आनन्दी के लिये सभी अवस्था आनन्ददायिनी होती है। जिस अवस्था में साधारण जन व्याकुल हो जाते हैं उस अवस्था में भी आनन्दी पुरुष आनन्द में ही रहता है। जहाँ भोजन तथा सुख सामग्री ही प्रधान वहाँ आनन्द कहाँ, क्षणिक सुख मिल सकता है किन्तु आनन्द तो किसी वस्तु को पाकर नहीं होता वह तो मन की विशेष स्थिति होती है तथा वहाँ मन, बुद्धि का भी पता नहीं रहता।

रास और रस की गति तन, मन तक ही सीमित है। आनन्द के लिये न रास की अपेक्षा है और न रस की। यह कैसे प्राप्त होता है यह प्रश्न है। प्राप्त है मानव मात्र को किन्तु उसका (आनन्द का) अनुभव नहीं करता। इस आनन्द प्राप्ति के लिये मनुष्य वैरागी, अनुरागी, गृहत्यागी, संन्यासी और न जाने क्या क्या बनता है। बनना क्यों? जो है उसका अनुभव करना है। अनुभव के अभाव में मनुष्य अनेक भ्रान्त धारणाओं का शिकार बन जाता है।

घर में रहकर भजन नहीं बनता ऐसा अनेक लोग समझते हैं। घर में रहकर यदि सांस लिया जा सकता है तो भजन भी बन सकता है। भजन के नाम पर जो लोग घण्टा दो घण्टा घर के काम से विराम चाहते हैं तो बात जुदा है। लोग बोलते भी हैं और सुनते भी हैं कि "काम किये जा, राम भजे जा, ना काहू का डर है" किन्तु कथन से तो कार्य नहीं बनता, हाँ कथन भी तो एक कार्य है यह बनता है।

बनना और बिगड़ना ये दो शब्द हैं। बनकर आया मनुष्य अब यह अनुभव करना है कि “तू अमर का पुत्र है” तुझे अपने पिता की आज्ञा का पालन करना है। उसने तुझे भेजा है आनन्द लोक से, आनन्द के लिये संसार रूपी उद्यान का आनन्द उपभोग कर। उन अज्ञानियों की बातों पर ध्यान न दे जो अपने पिता को भूल उसे अपवाद सुनाते तथा संसार को दुःख और पाप का भण्डार बनाते। यह न मुसाफिरखाना है और न यह दौलतखाना है। यह है चमन (उद्यान) जहाँ अनेक प्रकार के जीव-जन्तु, लता-पेड़, पहाड़-झरने, नद-नदी, समुद्र-महासमुद्र देखने को मिलते हैं। मिलते हैं और बिछुड़ते हैं, हँसते हैं और रोते हैं, आते हैं, और जाते हैं, खेल दिखलाते हैं और देखते हैं, कुछ पढ़ते हैं और कुछ पढ़ाते हैं, भक्ति करते और शक्ति का खेल दिखलाते, ग्रन्थ लिखते और लिखाते, चर्चा करते और कराते तथा समय बिता कर चले जाते हैं। आनन्दी इन सबका खेल देखता है और आनन्द की ध्वनि झंकृत करता हुआ, आनन्द लोक में चला जाता है।

यहाँ अनेक तथाकथित धर्म हैं, पंथ हैं, मन्दिर हैं, मस्जिद हैं, गिरजे हैं जहाँ अपने अपने धर्मों की महानता का तीव्र स्वर में घोष करते हैं। कोष बढ़ाते, रोष करते तथा सन्तोष की बात ही करते, लेते ही नहीं। इन धर्मों की विशेषता यह कि उन धर्मों का धर्मावलम्बी स्वर्ग का अधिकारी हो सकता है अन्य धर्मावलम्बी नहीं। यही नहीं अन्य धर्मावलम्बी उनकी दृष्टि में काफिर है म्लेच्छ है। इनका इष्ट एक होने पर भी झगड़ा रहता है पंथ का। ये दुनिया के धर्म हैं आनन्दी के नहीं। वह इन धार्मिक पचड़ों में फँसने के लिये नहीं आया वह तो आनन्द लेने तथा लुटाने के लिये आया है। सबको नमस्कार, न किसी का तिरस्कार।

झंझट तो स्वार्थ ने फैलाये किसी धर्म ने नहीं। मजहब (धर्म) तो महज रास्ता बतलाता है सुख से रहने का, युद्ध और लड़ाई नहीं। यदि किसी

प्रवर्त्तक ने ऐसा कहा है तो उसने सुख के स्थान पर दु:ख के बीज ही बोये हैं जिसका फल आज भी उस धर्म के अनुयायी भोग रहे हैं। आनन्दी का धर्म है आनन्द वह किसी प्रपंच में सम्मिलित नहीं होता। उसकी दृष्टि ही भिन्न होती है उसके लिये साकार, निराकार का प्रश्न नहीं आनन्द ही जीवन का मुख्य ध्येय है। पूजा अपने आत्मदेव की, न मन्दिर और न मस्जिद। उपदेश क्यों देगा वह तो अपने अनुभव की बात कहेगा कोई उसे उपदेश समझे तो समझे।

संकीर्ण हृदय वाला आनन्दी पुरुष नहीं होता वह दूसरे आनन्दी पुरुषों के अनुभव से लाभ उठाने की इच्छा रखता है। उसे न स्तुति प्रसन्न कर सकती है और न निन्दा अप्रसन्न। आनन्दी है आनन्द उसके रोम रोम में रमा हुआ है वहाँ स्तुति निन्दा का प्रवेश नहीं। ये दोनों ही कष्टदायक, एक अभिमान बढ़ाती तथा दूसरी क्रोध अशान्ति। दोनों अवस्थाओं का रक्त पर असर पड़ता है। मन अशान्त होने का अवसर होता है अत: आनन्दी आनन्द में मग्न वह इन दोनों (निन्दा, स्तुति) पर ही ध्यान नहीं देता।

अभागा प्राणी प्रभात में पक्षियों का कलरव सुनकर आनन्द नहीं लेता। पक्ष और विपक्ष में अपनी शक्ति का अपव्यय करता है। सन्ध्या हुई पक्षी अपने नीड़ में आ आनन्द कलरव करते हुए विश्राम करते हैं। जो कुछ उन्हें (पक्षियों को) प्राप्त हुआ उसी में सन्तोष कर सन्तोष शान्ति से निद्रा की गोद में आराम करते हैं और इधर यह विधाता की श्रेष्ठ कृति मनुष्य मध्य रात्रि तक अथक परिश्रम कर रहा है धन उपार्जन के लिये। न जाने कितनी इसकी क्षुधा है, लालसा है कि सन्ध्या के पश्चात् भी न आनन्द से अपने प्रभु को पुकारता है और न विश्राम लेता है। सुख से उसे निद्रा भी नहीं आती। रात्रि में स्वप्न देखता है कारण तन तो थक गया किन्तु मन की चञ्चलता तथा व्यथा दूर न हुई।

कमल खिला प्रभात में सूर्य की स्निग्ध किरणों के स्पर्श से किन्तु इसका (मनुष्य का) हृदय कमल न खिला ज्ञान, भक्ति पाकर भी। यह अभिशाप है या वरदान कि पशु-पक्षी विश्राम करें और प्रकृति का आनन्द उपभोग करें किन्तु मनुष्य उपभोग क्या करे वह तो भोग के लिये ही व्याकुल रहता है। रोग, भोग और शोक इसके त्रिदेव बने हैं। मानसिक रोग लेकर यह ब्रह्मा त्रिलोकपति विष्णु की तरह भोग करना चाहता है स्थूल वस्तुओं का और शोक करता हुआ धरा से विदा हुआ शिव की गोद में। धरा (पृथ्वी) इस धरा पर ही सब धरा रह गया सब कुछ, जिसे प्राप्त करने के लिये सुख की नींद भी सो न सका। प्राप्ति-प्राप्ति-प्राप्ति में आई विपत्ति और सम्पूर्ण शरीर काँप उठा क्योंकि उसने छल, कपट को अपनाकर की थी प्राप्ति उस धन की जिसे वह ले जा न सका अपने साथ। लिए कुछ मलिन विचार वही उसका धन था जिसे लेकर आया न था।

देख, उन आनन्दी पुरुषों को वे भी तेरी ही तरह आये थे इस भव में आनन्द भाव लेकर, आनन्द लिया और आनन्द दिया भव को। अभाव को समीप आने न दिया। भाव की झाड़ू लेकर अभाव रूपी कूड़े, करकट को सदा साफ करते हुए, निर्मल हृदय से उस आनन्द की वृष्टि की वाणी के रूप में कि आज भी उनके एक-एक शब्द महामन्त्र का काम कर रहे हैं। लोगों ने उन्हें सताने, दुर्वचन कहने में कमी न रखी किन्तु वे इन अज्ञानियों को कुछ समझाने, कुछ दिखलाने के लिये आये थे इनकी बातों पर ध्यान देने के लिये नहीं। न श्वान (कुत्ता) की तरह अन्य श्वान श्वान को देखकर गुरगुराये और न दुनिया के भोगों की प्राप्ति के लिये दुम हिलाई (खुशामद की)। सिंह की तरह उनकी वाणी आज भी गरज रही है वायु मंडल में, पुस्तकों में और उन्होंने भोगों का शिकार किया जब तक वे सशरीर धरा धाम पर रहे। शिकार किया भोगों का, स्वीकार न किया उन भोगों को। सिंह घास नहीं खाता तो

आनन्दी पुरुष ने भी उस भोग रूपी घास को कब स्वीकार किया जिस भोग रूपी घास का प्रत्येक ग्रास ग्रसित करता है रोग, शोक चिन्ता से।

आनन्दी की अवस्था आनन्दी ही जाने। आनन्द के प्रार्थी ही अल्प हैं फिर आनन्द को प्राप्त करने के लिये तो किसी आनन्दी की शरणागति की आवश्यकता है। याद रख - मनुष्य को कभी भगवान न मान। भगवान एक और वह है सत्य। सत्य ही नारायण है। नर नारायण नहीं। नर नारायण को अनुभव में लाकर ही आनन्द स्वरूप में लीन रहता तथा आनन्दी कहलाता। नर की पूजा न कर, नर के गुण को ग्रहण कर। नर यदि पूर्ण होता तो धरा पर आता ही क्यों? यदि कहा जाये कि भक्तों के लिये, तो यह भी कहना उचित नहीं। नर आया आनन्दलोक से आनन्द के लिये आनन्द की अभिलाषा ही उसे इस पृथ्वी पर खींच लाई और पृथ्वी भी घबड़ा उठी थी इन निरर्थक दुखियों से। अतः आनन्दी नर आया नाहर (सिंह) आया अपना आनन्द वाणी के रूप में लुटाने के लिये किन्तु उसीको भगवान न मान तू भी भगवान है तेरे हृदय सिंहासन पर भी वही नारायण आरूढ़ है जिसे तू आनन्दी का ही समझता है।

मूर्ति की पूजा, जिसकी मूर्ति है उसके गुण की पूजा नहीं? यह गलत धारणा है। नर-नर ही है, नारायण उसके हृदय में है तो तेरे भी हृदय में है। अन्य की केवल वार्त्ता कहने से आनन्द न मिलेगा। गुण ग्रहण कर, किसी की वाणी सुनकर अपने चैतन्य देव बलदेव को जगा कि फिर आये जिन्दगी का मजा। जिन्दगी तो गन्दगी नहीं यह तो वह कली है जो खिल कर पुष्प बनने के लिये आई है मुरझाने के लिये नहीं - समाधि प्राप्त करने के लिये ही अवधि मिली है जिन्दगी को।

अनेक बातें कहीं और बातें यहीं समाप्त नहीं होंगी ये तो चलती ही रहेंगी यदि इन में सत्य का अंश होगा तो वायु मंडल में गूंजती हुई आनन्दी पुरुषों के लिये आनन्द वर्द्धक होंगी। प्रथम पंक्ति यही थी और अन्तिम पंक्ति भी यही है – "तुम मुझे विश्वास दो, मैं तुम्हें आनन्द दूँगा"। विश्वास है कि आनन्द इच्छुक प्राणी को अवश्य ही आनन्द मिलेगा।

★★★★